UGC APPROVED JOURNAL - 47746
© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 01 | January – March 2018

साहित्य में स्त्री–दृष्टि

Suman Bala
Research Scholar of OPJS University, Rajasthan

पिछले दशक के सामाजिक उथल–पुथल ने भारत की महिलाओं के लिए एक नया रास्ता निकाला है, बार–बार कसौटी पर चढ़ते संतुलन ने उन्हें नई स्वानुभूति दी है, वे संबंधों को, निभाए जाने वाले धर्म की जगह संवादों के रूप में देखने लगीं है, उनकी क्षुधा शांत नहीं हो रही है, उन्हें अधिक प्रेम, सेक्स, पैसा, इज्जत ही नहीं बल्कि निष्ठा और संवेदनशीलता भी चाहिए, ज्यादातर शहरी स्त्रियों के लिए शादी और मातृत्व को टालते रहना, उनके संबंधों के महत्व पर गौर करने की जरूरत ही दर्शाता है, महिलाएं बताती हैं कि जेलर और जज की मानसिकता रखने वाले जीवनसाथी के साथ सफर तय करना बेहद कठिन है और 55 फीसदी तलाके के मामले हर साल महिलाओं द्वारा ही दायर किए जाते हैं आज एक बेटी के रूप में उसका दायित्व संपत्ति के उत्तराधिकार से कहीं बढ़कर है, बेटी को पिता की चिंता को अग्नि देते देखना अब असामान्य बात नहीं है। और यह बहुत ही गहन और प्रतीकात्मक बदलाव है, एक नजर में यह कई सीमाएँ तिरोहित करता है सामाजिक, भावनात्मक, धार्मिक और पारिवारिक भी। 21वीं सदी के भारत में यह बदलाव असान नहीं है लेकिन असंभव भी नहीं, महिलाओं की मुक्ति का सच कुछ और तस्वीर पेश करता है मृणाल पांडे की कृति ''स्टेपिंग आउट : लाइफ ऐंड सेक्सुअलिटी इन रूरल इंडिया'' में दिखाया गया है कि किस तरह स्त्री के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित सभी फैसलों पर पुरूष हावी रहते हैं परम्परा से हटकर किया गया कोई भी कार्य उनके लिए, अपमानजनक होता है, यहां तक कि जीवन बचाने के लिए किया गया वैद्य गर्भपात भी, नारीवाद के तमाम कलरव और जीवन में विभिन्न क्षेत्रों, खासकर राजनीतिक में, इक्का–दुक्का महिलाओं की कामयाबी की कथाओं के बावजूद, स्त्री महज प्रतिमा रूप में ही पूजी जाती रही है, मर्दों के अधिपत्य वाली दुनिया में जीती–जागती नारी को आधी से भी कम जगह मयस्सर होती रहीं है, इन हालात में रातो–रात किसी आमूल बदलाव की कल्पना करना हालांकि अब भी किसी फंतासी से कम नहीं है, लेकिन धीरे–धीरे खामोशी से औरतों की दुनियां में एक ठोस बदलाव रूपाकार ले रहा है, जिसकी अनदेखी करना अब संभव नहीं होगा, और यह ऐसे समय हो रहा है, जब भारत में मॉल संस्कृति पनप रही है, सौन्दर्य बाजार, अश्लील साहित्य स्पाई कैम, महिलाओं के जीवन में दर्द, अपराध बोध और शर्म उड़ेलने में काई कसर नहीं छोड़ रहे हैं, नारी को बतौर भोग की वस्तु और नुमाइश के रूप में चित्रित करने का उपक्रम इतनी आक्रामकता से कभी नहीं चला था, लेकिन संक्रांति और झंझावात के इस दौर में भी भारतीय नारी गर्त और स्वाभिमान से उठ खड़े होने की क्षमता दिखा रही है, क्रिया की प्रतिक्रिया उससे भी अधिक तेजी से हो रही है।

वर्तमान भारतीय आज भीषण वर्गीकरण का शिकार है एक ओर यहां अमरीका से होड़ लेती प्रौद्योगिकी है, विलासिता के साजो, सामान और उपकरण है, वहीं दूसरी और वे लोग भी है, जिन्हें आज भी पीने का पानी लाने के लिए मीलों दूर चलकर जाना पड़ता है और ईंधन के लिए भी दर–दर भटकना पड़ता है, दो जून को रोटी के लिए स्त्रियों को काफी मशक्कत करनी पड़ती है, भारतीय स्त्रियों में सामान्यता तीन वर्ग है, पहला वह दो प्रतिशत वर्ग है, जिसके वास शिक्षा, सुविधा, पद–सम्मान और मजबूत आर्थिक स्थिति है, ये महिलाएं सामाजिक और आर्थिक रूप से किसी प्रकार का जोखिम उठाने में सक्षम है, आर्थिक दृष्टि से इसी वर्ग से वे स्तियां भीं आती हैं, जो किटी–पार्टियों और ब्यूटी–पार्लर में अपना वक्त गुजारती हैं, पति का पैसा खर्च करने के अलावा उन्हें और कोई काम नहीं होता और वे सजावटी उपकरण की तरह ही होती हैं। दूसरे वर्ग में अठारह बीस प्रतिशत मध्यवर्ग की औरतें हैं, जो शिक्षित, उच्च शिक्षित और अर्द्ध–शिक्षित हैं, पारिवारिक जरूरतों को पूरा करने के लिए वे नौकरी करती हैं, और गृहस्थी भी चलाती हैं, घर–बाहर के दायित्वों को बखूबी–निभाते हुए वह सोचने–विचारने की शक्ति भी जुटा लेती हैं, यही वर्ग है, जिसमें सर्वाधिक जागरूक और विद्रोही स्त्रियां हैं तो दूसरी और पारम्परिक और रूढ़िवादी, यथास्थितिवादी मनोवृति की स्त्रियां भी मौजूद है, दलित साहित्यकारों को छोड़ 'लेखिकाओं' की बड़ी तदाद इसी मध्यवर्गीय समाज की उपज है। तीसरा सबसे बड़ा जनसमूह उन अस्सी प्रतिशत स्त्रियों का है, जो विकास भी हर किरण से बेखबर और उपेक्षित है, उनके पास न तो शिक्षा है, न जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति का सबल साधन, उनके जीवन का आधा से अधिक वक्त रोजी–रोटी के संघर्ष में ही खत्म हो जाता है, वे शहरों में घरों में काम करती हैं, कल–कारखानों में उत्पादन के कार्यों से जुड़ी है तो ग्रामीण इलाकों में मजदूर और भवन–निर्माण और लघु–कुटीर उद्योगों, बुनाई कताई, सिलाई आदि में अपना श्रम देती हैं और हर जगह असमानता का शिकार होती हैं। उन्हें कल–कारखानों और खेती के श्रम का हमेशा पुरूषों से कम धन मिलता है, चाहे वह उनके बराबर या उससे अधिक ही श्रम क्यों न करे। इस वर्ग की स्त्रियों में कोई महत्वाकांक्षा नहीं होती है, उनके लिए स्त्री–मुक्ति और नारीवाद अनजाना शब्द है, जिसका उसके जीवन में कोई औचित्य उन्हें नजर नहीं आता, वंचितों के इसी वर्ग में सबसे अधिक वंचित दलित स्त्री है, जो सामाजिक रूप से मजदूर और अन्य वर्ग की ग्रामीण स्त्रियों से भी विपन्न है, यहां भी समस्याएं मजदूर स्त्रियों की तरह ही आर्थिक, शैक्षिक है, लेकिन शहरों में तो दलित स्त्रियां सरकारी और गैरसरकारी ''सफाई कर्मचारी'', की भूमिका निभाती हैं, परन्तु सामाजिक रूप से वे ग्रामीण दलित स्त्रियों की तरह ही भेदभाव का शिकार होती हैं, हर कदम पर उन्हें अपमानित होना पड़ता है, हालांकि समय के साथ–विशेषकर शहरों में कई संगठनों द्वारा इनके भेदभाव के खिलाफ विद्रोह का स्वर तेज हुआ है परन्तु गाँवों में स्थिति आज भी ज्यों की त्यों है वही छुआ–छुत और जलालत भरी, जिंदगी जूठन, उठाने, कूड़ा–कचरा, मलबा ढोने, में इनकी जिन्दगी तबाह हो रही है, सरकार और गैरसरकारी संगठनों द्वारा कई योजनाओं द्वारा इन्हें लाभ पहुंचाने की कोशिश की जा रही है, लेकिन वह नाकाफी है, सूचना के अभाव और चेतना के अभाव से उन्हें इस बात का बोध

ही नहीं होता कि क्या–क्या सरकारी प्रयास उनके लिए किए जा रहे हैं, और कौन–कौन से कानूनन अधिकार उन्हें प्रदत्त हैं, इसकी वजह से भी वे सामाजिक रूप से अमानवीय बर्ताव का शिकार हो रही हैं। सरकार और महिला संगठनों का ध्यान इस उपेक्षित दलित महिला की तरफ नहीं है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है परन्तु संवेदनशील लेखकों और लेखिकाओं ने भी अपनी रचनाओं में इन्हें कैसे अस्पृश्य बना दिया यही आश्चर्य है, हिन्दी साहित्य ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में पुरूष और स्त्री लेखिकाओं के साहित्य में ''दलित महिला'' पात्रों की अनुपस्थिति इस बात का संकेत करती है कि समाज और साहित्य दोनों ने इन्हें उपेक्षित किया, पीड़ितों और दलितों के साथ खड़े होने वाले साहित्य में दलित पुरूष की तो यदा–कदा उपस्थिति हैं लेकिन, दलित स्त्रियां पूरी तरह नगण्य है, वर्तमान परिदृश्य में जबसे दलित लेखन हाशिए से उठकर केन्द्र में आने की चेष्टा कर रहा है तभी से भारतीय भाषाओं में विशेषकर मराठी में दलित महिलाओं ने इस ओर ध्यान खींचा है सर्वप्रथम तारा बाई शिंदे की स्त्री–पुरूष तुलना ने इस दिशा में नई जमीन तोड़ी है अब तक उल्लेख पुस्तक का सही प्रकाशन सन् उपलब्ध नहीं हो पाने की वजह से यह ज्ञात नहीं हो पाया है कि अज्ञात हिन्दू विधवा की सीमंतनी उपदेश का प्रकाशन इसके पूर्व हुआ या पश्चात में खैर यह विवादास्पद मुद्दा है महत्वपूर्ण यह है कि एक दलित रचनाकार वह भी स्त्री ने ''स्त्री–पुरूष तुलना'' लिखकर अभिव्यक्ति के खतरे को उठाया और समाज का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया, बाद में दया पवार ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से दलित महिलाओं की त्रासद स्थिति का वर्णन किया, कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा ''दोहरा अभिशाप'' भी इसी श्रृंखला की अगली कड़ी है, डॉ0 विमल कीर्ति ने ''स्त्री–मुक्ति तथा दलित–मुक्ति'' में तुलनात्मक अध्ययन'' नामक अपने शोध में यह निष्कर्ष स्वरूप माना है कि ''स्त्री का दलितपन स्त्री–पुरूष संबंधों में है, और दलित समाज की गुलामी का संबंध सामाजिक संबंधों में यानि हिन्दू धर्म में है (इसलिए) स्त्री का दलितपन या दलित स्त्री का दलित पन भौतिक विकास के साथ, शिक्षा तथा आर्थिक विकास के साथ समाप्त हो जाता है, लेकिन दलित समाज का दलितत्व केवल भौतिक विकास, शिक्षा तथा आर्थिक विकास से खत्म नहीं होगा, उसके लिए आपको हिन्दुत्व के खिलाफ भी लडना होगा।

दलित–समाज के तुलनात्मक अध्यनकर्ता ने यहां दलित स्त्री की मुक्ति की प्रक्रिया इतना सरल और आसान बना दिया है कि ऐसा जान पड़ता है कि इसके पति ''गंभीरता से खर्च की जा रही ऊर्जा और बुद्धि दोनों बेइमानी है। असल में, पितृसत्ता को बनाये–बचाये रखने वाली सांस्कृतिक अस्मिताएँ स्त्री समस्या पर विचार करने से बचती है, जब भी स्त्री की दासता का मुद्दा उठाया जाता है, वे या तो अपनी महान परम्परा का हवाला देने लगती है या अपने व्यापक मूल लक्ष्य में इसे शामिल बताकर संतुष्ट हो जाती है, या इसे 'शत्रु–अस्मिता' का षडयंत्र घोषित कर देती हैं, दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर डॉ0 विमल कीर्ति ''स्त्री–प्रश्न को'' दलित मुक्ति आंदोलन के विरोधियों के षडयंत्र के रूप में ही देखते हैं, ''स्त्री दलितों में भी दलित है, यह तर्क दलित मुक्ति आंदोलन के विरोधियों द्वारा प्रसारित है, डॉ0 विमल कीर्ति का सुझाव

है कि ''स्त्री–पुरूष संबंधों का विश्लेषण अलग से होना चाहिए, इसको दलित स्त्री और पुरूष के बीच संघर्ष का विषय नहीं बनाया जाना चाहिए।''

वहीं स्त्री–प्रश्न पर दलित बहुचर्चित 'दलित लेखक' 'औमप्रकाश वाल्मीकि अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं कि ''स्त्री दलितों में भी दलित है'' वे स्त्री होने के दोहरे अभिशाप को पारस्परिक व्यवस्था से जोड़ते हैं, ''इसके लिए व्यवस्था जनित परम्परावादी सोच उत्तरदायी है जो स्त्री को दूसरे दर्जे का नागरिक ही नहीं, पांव की जूती समझती है।'' उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि ''दलित वर्ग में भी इस व्यवस्था की घुसपैठ है'' वाल्मीकि जी की इस स्वीकारोक्ति से दलित ''स्त्रियों को अवश्य उम्मीद जगी होगी कि उनकी दासता के प्रश्न को वाल्मीकि अवश्य–दलित–विमर्श के केन्द्र में लायेंगे, और आत्म–परीक्षण, और आत्मालोचन की नयी प्रक्रिया शुरू होगी और मुक्ति का एक नया अध्याय जुड सकेगा क्योंकि, मुक्ति का कोई भी आख्यान तब तक अधूरा रहता है, जब तक पीड़ित समुदाय का रचनाकार, कमजोर बना दिये गये अन्य समीपस्थ समुदायों को शामिल करने का यत्न नहीं करता, जब प्रेमचन्द ने सौन्दर्य के प्रतिमान बदलने की बात कही थी, तब उन्होंने स्त्रियों के प्रति दृष्टि में बदलाव को अनिवार्य बनाया था, इसी प्रसंग में वे क्रमानुपात का सवाल भी उठाते हैं। जो समुदाय दासता की जितनी दीवारों के भीतर है, उसे उसी क्रम और अनुपात में लेखन का विषय बनाया जाना चाहिए, प्रेमचन्द इस सन्दर्भ में बलपूर्वक कहते हैं कि ''उसका (लेखक का) दर्द से भरा हृदय इसे सहन नहीं कर सकता कि एक समुदाय क्यों सामाजिक नियमों और रूढ़ियों के बंधन में पड़कर कष्ट भोगता रहे ? क्यों न ऐसे सामान इकट्ठा किये जायें कि वह गुलामी और गरीबी से छुटकारा पा जाये ? वह इस वेदना को जितनी बेचैनी के साथ अनुभव करता है, उतना ही उसकी रचना में जोर और सच्चाई पैदा होती है अपनी अनुभूतियों को वह जिस क्रमानुपात में व्यक्त करता है, वही उसकी कला–कुशलता का रहस्य है।

दलित–समाज के तुलनात्मक अध्यनकर्ता ने यहां दलित स्त्री की मुक्ति की प्रक्रिया इतना सरल और आसान बना दिया है कि ऐसा जान पड़ता है कि इसके पति ''गंभीरता से खर्च की जा रही ऊर्जा और बुद्धि दोनों बेइमानी है। असल में, पितृसत्ता को बनाये–बचाये रखने वाली सांस्कृतिक अस्मिताएँ स्त्री समस्या पर विचार करने से बचती है, जब भी स्त्री की दासता का मुद्दा उठाया जाता है, वे या तो अपनी महान परम्परा का हवाला देने लगती है या अपने व्यापक मूल लक्ष्य में इसे शामिल बताकर संतुष्ट हो जाती है, या इसे 'शत्रु–अस्मिता' का षडयंत्र घोषित कर देती हैं, दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर डॉ0 विमल कीर्ति ''स्त्री–प्रश्न को'' दलित मुक्ति आंदोलन के विरोधियों के षडयंत्र के रूप में ही देखते हैं, ''स्त्री दलितों में भी दलित है, यह तर्क दलित मुक्ति आंदोलन के विरोधियों द्वारा प्रसारित है, डॉ0 विमल कीर्ति का सुझाव है कि ''स्त्री–पुरूष संबंधों का विश्लेषण अलग से होना चाहिए, इसको दलित स्त्री और पुरूष के बीच संघर्ष का विषय नहीं बनाया जाना चाहिए।''

वहीं स्त्री–प्रश्न पर दलित बहुचर्चित 'दलित लेखक' 'औमप्रकाश वाल्मीकि अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं कि ''स्त्री दलितों में भी दलित है'' वे स्त्री होने के दोहरे अभिशाप को पारस्परिक व्यवस्था से जोड़ते हैं, ''इसके लिए व्यवस्था जनित परम्परावादी सोच उत्तरदायी है जो स्त्री को दूसरे दर्जे का नागरिक ही नहीं, पांव की जूती समझती है।'' उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि ''दलित वर्ग में भी इस व्यवस्था की घुसपैठ है'' वाल्मीकि जी की इस स्वीकारोक्ति से दलित ''स्त्रियों को अवश्य उम्मीद जगी होगी कि उनकी दासता के प्रश्न को वाल्मीकि अवश्य–दलित–विमर्श के केन्द्र में लायेंगे, और आत्म–परीक्षण, और आत्मालोचन की नयी प्रक्रिया शुरू होगी और मुक्ति का एक नया अध्याय जुड सकेगा क्योंकि, मुक्ति का कोई भी आख्यान तब तक अधूरा रहता है, जब तक पीड़ित समुदाय का रचनाकार, कमजोर बना दिये गये अन्य समीपस्थ समुदायों को शामिल करने का यत्न नहीं करता, जब प्रेमचन्द ने सौन्दर्य के प्रतिमान बदलने की बात कही थी, तब उन्होंने स्त्रियों के प्रति दृष्टि में बदलाव को अनिवार्य बनाया था, इसी प्रसंग में वे क्रमानुपात का सवाल भी उठाते हैं। जो समुदाय दासता की जितनी दीवारों के भीतर है, उसे उसी क्रम और अनुपात में लेखन का विषय बनाया जाना चाहिए, प्रेमचन्द इस सन्दर्भ में बलपूर्वक कहते हैं कि ''उसका (लेखक का) दर्द से भरा हृदय इसे सहन नहीं कर सकता कि एक समुदाय क्यों सामाजिक नियमों और रूढ़ियों के बंधन में पड़कर कष्ट भोगता रहे ? क्यों न ऐसे सामान इकट्ठा किये जायें कि वह गुलामी और गरीबी से छुटकारा पा जाये ? वह इस वेदना को जितनी बेचैनी के साथ अनुभव करता है, उतना ही उसकी रचना में जोर और सच्चाई पैदा होती है अपनी अनुभूतियों को वह जिस क्रमानुपात में व्यक्त करता है, वही उसकी कला–कुशलता का रहस्य है।

सन्दर्भ

1. ''दुर्ग द्वार पर दस्तक'', कात्यायनी, पृष्ठ संख्या 66 प्रथम सं0 1997, परिकल्पना प्रकाशन गौमती नगर लखनऊ, 010।

2. ''नारी लेखन'', (लेख) मृणाल पाण्डे, पृष्ठ संख्या 4, मार्च 2001, हंस, अक्षर प्रकाशन, अंसारी रोड़ दरियागंज, न.दि. 02।
3. ''कविता'', जया जादवानी, हंस पृष्ठ संख्या 94, मार्च 2001, हंस, अक्षर प्रकाशन, अंसारी रोड़ दरियागंज, न.दि. 02।
4. ''थेरी गाथा'', पृष्ठ संख्या 89 संपादन, विमल कीर्ति, (सभार) ''स्त्रीत्व का मानचित्र'', अनामिका, सारांश प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1997
5. ''आधा इतिहास ही गायब है'', (लेख) सुमन राजे, वागार्थ अंक 24, मार्च 1997।
6. वही पृष्ठ संख्या 56।
7. वही पृष्ठ संख्या 56।
8. वही पृष्ठ संख्या 56।
9. वही पृष्ठ संख्या 56।
10. ''सीटेड इन इनट्रोडक्शन, बट्रेल रसेल'', वर्जीनिया वुल्फ, पेज नं0 8 (सभार), ''स्त्रीत्व का मानचित्र'', अनामिका, सारांश प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1997।
11. ''अवरोधवासिनी'', रूक्कया सकावत हुसैन, (ढाका वुमैन फॉर वुमैन, संपादन, रोशन जहां) पेज नं0 34, (सभार), ''स्त्रीत्व का मानचित्र'', अनमिका, सारांश प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1997।
12. ''स्त्रीत्व का मानचित्र'', अनामिका, पृष्ठ संख्या 131 सारांश प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1997।
13. ''स्त्री परम्परा और आधुनिकता'', संपादक, राजकिशोर पृष्ठ 23, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 02।
14. ''स्त्री–पुरूष तुलना'', ताराबाई शिंदे, पृष्ठ संख्या 67, संवाद प्रकाशन मेरठ।
15. ''विद्रोही स्त्री'', जर्मेन ग्रीयर, पृष्ठ संख्या 85, संवाद प्रकाशन मेरठ।
16. ''चुकते नहीं सवाल'', मृदुला गर्ग, पृष्ठ संख्या 96 राजकमल प्रकाशन।
17. वही पृष्ठ संख्या 105।
18. ''साहित्य में स्त्री दृष्टि'' (लेख) डॉ0 चन्द्रा सदायत, पृष्ठ संख्या 195। (सभार), स्त्री–अस्मिता : साहित्य और विचारधारा संपादन, डॉ0 जगदीश्वर चतुर्वेदी व अन्य।
19. वही पृष्ठ संख्या 197।
20. वही पृष्ठ संख्या 199।
21. श्रृंखला की कडियां, लेख (लेख) डॉ0 चन्द्रा सदायत, पृष्ठ संख्या 195। (सभार), स्त्री–अस्मिता : साहित्य और विचारधारा संपादन, डॉ0 जगदीश्वर चतुर्वेदी व अन्य।
22. ''साहित्य में स्त्री दृष्टि'' (लेख) डॉ0 चन्द्रा सदायत, पृष्ठ संख्या 195। (सभार), स्त्री–अस्मिता : साहित्य और विचारधारा संपादन, डॉ0 जगदीश्वर चतुर्वेदी व अन्य।
23. ''स्त्रीवादी साहित्य विमर्श'', जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्टीव्यूटर्स, दरियागंज।

24. वही पृष्ठ संख्या 78।

25. वही पृष्ठ संख्या 56।